तीसरा अध्याय

आर्थिक जीवन का चित्रण

आर्थिक जीवन का चित्रण

यह ठीक ही कहा गया है कि लोक-साहित्य समाज के विकास का पत्रक है। हमारे आर्थिक जीवन का विकास-क्रम भी लोक-साहित्य में मिलता है। मनुष्य के आर्थिक-संगठन 'भोजन' तथा 'सम्पत्ति' से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध होते हैं। मानव पहले भोजन के लिए शिकार करता था, फिर चरवाहे का जीवन व्यतीत करने लगा, फिर खेती करने लगा और अब कल-कारखाने चलाने लगा है। मानव के इन आर्थिक जीवन के चित्र लोक-साहित्य में मिलते हैं। सुविधा के लिए हमने इस अध्याय को जीवन में अर्थ एवं श्रम का महत्व, जीविका के साधन तथा आर्थिक जीवन का यथार्थ चित्रण उपशीर्षकों में विभक्त किया है।

जीवन में अर्थ का महत्व

पाँच कवर भीतर, तब देवता पितर

मानव के चार पुरुषार्थों में एक अर्थ भी है। इस 'अर्थ' का प्रारम्भ भोजन से होता है और यह 'सम्पत्ति' तक पहुँचता है। प्रारम्भ में व्यक्ति के लिए भोजन ही सब कुछ था। आज भी कहा जाता है कि पहले पाँच 'कवर' पेट में जाये, उसके बाद ही देवता या पितृ लोगों के नाम लूँगा।[१] साधारण व्यक्तियों को कौन कहे, जो साधु-महात्मा हैं, यदि उन्हें भी भोजन न मिले तो ईश्वर का नाम उनसे नहीं लिया जाता।[२]

जो विवाह करते हैं, उनमें इतनी शक्ति होनी चाहिये कि अपनी पत्नी को खिला सकें, अन्यथा भोजपुरी कहावतों में उनकी निन्दा की गयी है।[३] भले ही कोई मारे या पीटे लेकिन यदि वह सुअन्न-अन खिलाता है तो उसकी सराहना

---

१. पाँच कवर भीतर, तब देवता पितर।

२. भूखे भजन न होइ गोपाला, ले ल आपन कंठी माला।

३. खियावे के ना पियावे के, धा-धा माँग टीके आवे के।

की गयी है ।[1] भोजन के लिए लोग कई-कई मील जाते हैं[2] और जिसका भाग खाते हैं, उसकी प्रशंसा भी करते हैं ।[3] वास्तव में भोजन हमारे जीवन की प्रथम आवश्यकता है । शिकारी जीवन में इसका महत्व था और अब भी है ।

ए छूंछा तोके के पूछा ?

जब मानव का और विकास हुआ, उसकी आवश्यकताएँ बढ़ीं, तब सम्पति तथा धन का भी निर्माण हुआ । जिसके पास धन होता है, लोग उसका आदर आज भी करते हैं और जो गरीब होता है, जिसके पास पैसे नहीं होते उसे कोई पूछता तक नहीं ![4] यदि हमारे पास पैसे हैं, रुपये हैं तो हम अपनी इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं ।[5] भोजपुरी कहावतों में कहा गया है कि किसी के पास तीन ही कौड़ी हैं और उसकी इच्छा है कि वह चूड़ा तथा लहठी दोनों ही पहने । भला उसकी इच्छाएँ कैसे पूरी हों ।[6] बाजे वाले को जब हम रुपये देते हैं तभी वे मन से बाजे बजाते हैं[7] बिना पैसे के तो हम बाजार में इधर-उधर दौड़ते रह जाते हैं, कोई सामान नहीं देता ।[8] इस प्रकार निरर्थक घूमना हास्यास्पद माना गया है । इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के पास पैसे-रुपये चाहिये, अन्यथा जीवन में उसे इधर-उधर भटकना पड़ता है, वह अपने मन के अनुसार कोई कार्य नहीं कर सकता ।

संस्कृति के मूल्यों में एक धन कमाना भी

भोजपुरी लोक गीतों में बार बार 'सोने के थारी में जेवना परोसलो', 'सोने के गड़ुआ गंगाजल पानी', 'पाँच-पाँच पनवा के बिरवा लगवलो', तथा 'फूल हजारी के सेज डसवलो' का उल्लेख मिलता है । जन्म संस्कार से लेकर मृत्यु संस्कार तक में खूब खर्च करने का उल्लेख मिलता है । अर्थात् हमारी संस्कृति में अर्थ का, भौतिक सुखों का भी मूल्य है ।

---

१. मारेले त मारेले, बाकिर सुअन्न अन्न खियावे ले नू ।
२. दही चिउरा बारह कोस, लिचुई अठारह कोस ।
३. जेकर खाइबि, ओकर गाइबि ।
४. ए छूंछा तोके के पूछा ?
५. दरबे से सरबे, चहबे से करबे ।
६. तीनि कउड़ी गाँठी, चूरी पहिरों की लहठी ।
७. लेदे के ना देबे के बजाउ रे बजाउ ।
८. पइसा ना कउड़ी, बीच बाजार में दउरा-दउरी ।

जिसके घर में दस मन अनाज तथा गाँठ में दस रुपए भी हों, उस व्यक्ति को भोजपुरी लोक साहित्य में सुखी माना गया है।[1] वह व्यक्ति मस्ती से चलता है क्योंकि उसके पास भोजन के लिए अनाज हैं तथा अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए रुपये भी हैं। भोजपुरी लोक साहित्य में कहीं भी गरीबी को आदर्श नहीं माना गया है। हमेशा हम सुखी जीवन की कामना करते हैं। किसी को आशीर्वाद भी हम धन कमाने, तगड़ा रहने एवं दूध से नहाने और दूध से ही कुल्ला करने का देते हैं।[2] किसी को यह नहीं कहा जाता कि तुम दरिद्र हो जाओ। अतः जो यह कहते हैं कि भारतीय संस्कृति अर्थ की उपेक्षा करती है, वह ठीक नहीं है। हमारी संस्कृति के मूल्यों में एक धन कमाना भी है।

धन की रक्षा और उसका विनाश

भोजपुरी लोक-साहित्य में केवल भोजन तथा धन के महत्व को ही नहीं बतलाया गया है, बल्कि यह भी बतलाया गया है कि हमें धन किन साधनों से, कैसे प्राप्त करना चाहिये तथा कैसे इसकी रक्षा करनी चाहिये। बिना परिश्रम के जो रुपये मिलते हैं, वे ऐसे ही खर्च हो जाते हैं। लोक का कहना है कि जो रुपया पानी की तरह आता है, वह पानी में ही चला जाता है।[3] बम्बई तथा कलकत्ता में हम देखते हैं कि वहाँ दूध बेचने वाले दूध में पानी मिलाकर बहुत रुपये कमाते हैं किन्तु वे रुपये उनके काम नहीं आते। वे फटे हाल बने रहते हैं। एक बार ही दो-तीन भैंसे मर जाती हैं, उनका दिवाला निकल जाता है।

लोक-कथाओं में भी दिखलाया गया है कि बेईमानी के रुपये रहते नहीं। 'दो ठग एक तेली' कथा में उल्लेख है कि दो बाप-बेटा ठग सभी को ठगते थे किन्तु जब उन्होंने एक तेली को ठगा तो उसने केवल उनके सभी धन को ही नहीं लिया, वरन् तेली राम को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ा।

एक भोजपुरी कहावत में कहा गया है कि हमें धन और इज्जत की रक्षा करनी चाहिये।[4] धन हमेशा नहीं मिलता है। इसलिए जब मिले तब बुरे दिनों

---

१. दस मन अन, दस रुपया गाँठी
अइंठत चलसु जइसे कोल्हू के जाठी !

२. दूधे नहा, दूधे कुला कर।

३. पानी के पइसा पानी में जाला।

४. धन आ इज्जति जोगवला के ह।

के लिए इसे बचाकर रखना चाहिये । वास्तव में यह कितनी महत्व पूर्ण बात है । इसके साथ यह भी कहा गया है कि कसाई, शिकारी तथा कंजूस का धन नहीं लेना चाहिए, नहीं तो अपने धन का भी विनाश हो जाता है । बेटी के बढ़ने से धन घटता है और यदि इस पर भी धन न घटे तो मुकदमा लड़ो ।[1] वास्तव में हमारे समाज का बहुत धन बेटी के विवाह तथा मुकदमेबाजी में गल जाता है और समाज में देखा गया है कि दुष्टों से पाया गया धन नहीं रहता लोक ने अपने अनुभव को ही कहा है ।

श्रम का महत्व

श्रम न करने से शक्ति क्षीण

धन कमाने के लिए परिश्रम करना पड़ता है । इसी से जीविका चलती है । लोक कथाओं में उस पात्र को आदर्श माना गया है, जो अपने कर्म पर विश्वास करता है, अपनी भुजाओं की शक्ति पर विश्वास करता है ।[2] ऐसे पात्र अपने श्रम से, प्रयत्न से कठिनाइयों पर विजय पाते हैं ।

जो आदमी आलसी होता है, काम नहीं करता, लोग उसे हेय दृष्टि से देखते हैं । वे कहते हैं कि तुम कोढ़ी हो या लंगड़े हो कि काम नहीं करते या किसी का कर्ज खाया है, जिसे चुकाने के लिए अपने शरीर को बचा रहे हो ।[3] लोक का विश्वास है कि श्रम न करने से शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है, इसलिए परिश्रम आवश्यक है ।[4] वास्तव में लोक चारों ओर देखता है कि जो मेहनत नहीं करते या मेहनत से जी चुराते हैं, वे दिन पर दिन आलसी होते जाते हैं और जो मेहनत करता है, वह दिन पर दिन मेहनती होता जाता है ।

---

१. चिक बहेलिया सूम धन, औ बेटी के बाढ़ि ।
एहु से धन न घटे त कर बड़न से रारि ।

२. किसके भाग्य से—एक राजा को दो लड़कियाँ थीं । राजा ने उनसे पूछा कि तुम लोग किसके भाग्य से हो ? बड़ी ने कहा कि आप के भाग्य से और छोटी ने कहा कि ,अपने भाग्य से । राजा ने बड़ी का विवाह एक राजकुमार से कर दिया और छोटी का एक लकड़ीहारा से, किन्तु अपने परिश्रम से छोटी सुखी बनती है और वह राजा को भी खिलाती है ।

३. देंहिया साहु के लावन लागी का ?

४. जाँगर में घुन लागल ।

श्रम-विभाग

भोजपुरी साहित्य में श्रम-के विभाग का भी उल्लेख मिलता है। औरतें घर का काम करती हैं, इसलिए उन्हें 'घरनी' कहा जाता है।[१] बिना घरनी के घर भूत का डेरा हो जाता है।[२] अहीरों की स्त्रियाँ दही बेचने बाहर भी जाती हैं।[३] 'भरबोतन' की कथा में उसकी माँ घास गढ़ने भी जाती है।

पुरुष घर के बाहर के काम देखते हैं। वे खेती करते हैं।कमाने के लिए उन्हें परदेश भी जाना पड़ता है। घर के खर्च का भार घर के बड़े-बूढ़ों पर रहता है।[४] इस भाँति परिवार से लेकर समाज तक में श्रम-विभाग मिलता है।

सबके लिए श्रम आवश्यक

लोक साहित्य में प्रत्येक व्यक्ति के लिए श्रम करना जितना आवश्यक है, उतना अभिजात साहित्य में नहीं। लोक कथाओं में जैसे सामान्य व्यक्ति गाय-भैंस चराते हैं, नौकरी करने के लिए जाते हैं, वैसे ही एक राजकुमार भी भैंस चराता है, नौकरी करने जाता है तथा कभी-कभी तो उसे धोबी के यहाँ भी नौकरी करनी पड़ती है। 'भरबोतन' लोक कथा में इनका विस्तार रूप में चित्रण हुआ है।

इस प्रकार के चित्रण से कुछ लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं कि भला राजकुमार है और वह भी एक सामान्य व्यक्ति के यहाँ नौकरी करता है? वे कहते हैं कि यह तार्किक नहीं लगता। वे इस बात को भूल जाते हैं कि लोक-साहित्य पूरे समाज का होता है और उसके यहाँ सभी लोग समान हैं। सबके लिए श्रम आवश्यक है। एक सामान्य व्यक्ति भी अपने पुत्र को राजकुमार मानता है, उसे वह राम-कृष्ण के रूप में देखता है। अतः श्रम से वंचित रहकर, वहाँ कोई सुखी नहीं रह सकता।

जीविका के साधन

प्रारम्भ में जब मानव शिकारी जीवन व्यतीत करता था, तब उसकी आव-

---

१. बिन बैला खेती करे, बिन भाइन के मारि।
बिन मेहरारू घर करे, तीनू काम बेकाम॥

२. बिन घरनी घर भूत के डेरा।

३. दूध दही के बेचन वाली, बात बोले गरमाई।
अइसन चुनरी, हजार परल बा, पहिरत मोर पनिहारी।

४. लइकन के संग तहा बाजे मृदंग, बुढ़वन के संग तहाँ खर्ची के दंग।

श्यकताएँ कम थीं, इसलिए जीविका के साधन अर्थात आर्थिक संगठन सामान्य थे। ज्यों-ज्यों उसके जीवन का विकास होता गया, त्यों-त्यों उसकी जीविका के साधन में भी विकास होता गया, क्योंकि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है।

शिकारी जीवन में जहाँ व्यक्ति पशुओं के शिकार करता था, उसके बाद वह उन्हें पालने लगा और खेती भी करने लगा। इस भाँति उसने पशु-पालन एवं कृषि युग में प्रवेश किया। तब से लेकर सामंतवाद के बाद और औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व तक खेती के अतिरिक्त व्यापार, नौकरी, विभिन्न दस्तकारी तथा कई गृह उद्योग-धन्धे आदि उसकी जीविका के साधन बन गये या हम कहें कि आर्थिक संगठन बने। इन सभी जीविका के साधनों का उल्लेख भोजपुरी लोक साहित्य में हुआ है।

आदर्श जीविका

लोक के [illegible] ज्ञान का संचित कोष है। लोक का साहित्य एक विशाल समुद्र की भाँति है, जिसमें अनुभव की विविध नदियाँ आकर मिलती हैं। वह सबको अपना लेता है। उसने जीविका के साधनों में खेती को उत्तम, व्यापार को मध्यम, नौकरी को अधम तथा भीख माँगने को सबसे निकृष्ट माना है।[1]

यह लिखने के साथ ही किसानों का स्वतन्त्र जीवन मेरे सामने आ जाता है। एक बार एक किसान हमसे कह रहा था कि हम लोग किसी के नौकर नहीं हैं। अपना काम करते हैं। जब चाहें करें, जब चाहें न करें। हम व्यापारी भी नहीं हैं जो पैसे के लिए हाय-हाय करता रहता है, सबको ठगता है। इनके साथ ही नौकरी की परवशता मेरे सम्मुख अंकित हो गयी,[2] गाँव के बनिये का रूप भी मेरे सामने आ गया तथा उस हृष्ट-पुष्ट युवक को तो मैं कभी भूलता ही नहीं जो दीन-भाव से प्रत्येक दरवाजे पर कहता—"ए गरीब के कुछु भीखा दीं........ भीक्षा दीं।"

वास्तव में लोक ने आदर्श जीविका को सूत्रबद्ध कर दिया है। गाँवों में

१. उत्तम खेती, मध्यम बान।
अधम चाकरी, भीखि निदान।

२. राजा हो बड़ा कड़ा जल बरिसे, नौकरी कइसे जइब ना।
रानी हो मुखे रुमलिया हाथ में छाता, धीरे-धीरे चलि जइबो साहब तलब करिहें ना।

इनके अतिरिक्त पशु-पालन, अपने जातीय कर्म तथा जीविका के अन्य साधन मिलते हैं।

खेती

भारत एक कृषि प्रधान देश है। खेती पर इसकी अर्थ-व्यवस्था निर्भर करती है। ऐसे भी अन्न की हमारे जीवन में मूलभूत आवश्यकता है। बिना अन्न के, भोजन के हम जीवित ही नहीं रह सकते। अतः खेती करना हमारे लिए बहुत आवश्यक है।

धरती माँ के समान

शिकारी जीवन के बाद मानव ने पशु-पालन तथा कृषि-जीवन में प्रवेश किया। वह खेती करने लगा। जमीन अथवा भूमि के प्रति उसका अपनापन हुआ। बाद में वे जमीन को सब कुछ मानने लगे। आज भी कहा जाता है कि धरती और माँ समान हैं।[1] अर्थात् जैसे माँ अपने दूध को पिलाकर हमें स्वस्थ बनाती है, वैसे ही धरती हमें अन्न खिलाती है। इसलिए इसकी रक्षा भी माँ के समान करनी चाहिए। गाँव के लोग खेत के मेड़ पर लड़ते-लड़ते मर जायेंगे किन्तु अपनी एक इंच जमीन दूसरे को नहीं देंगे। एक बीघे खेत के लिए वे जीवन भर मुकदमा लड़ते रह जाते हैं।

जिसके पास जितनी अधिक जमीन रहती है, वह उतना ही धनी माना जाता है।[2] यदि किसी के पास सम्पत्ति हो किन्तु जमीन न हो तो लोक उसे धनी नहीं मानता।[3] उनका कथन है कि धरती अचल सम्पत्ति है और रुपए-पैसे तो चार दिन के लिए आते हैं, ये अस्थायी होते हैं। इसीलिए रुपए मिलने पर गाँव के लोग जमीन खरीदते हैं, जब कि शहरी लोग मकान बनवाते हैं, मोटर खरीदते हैं या विलास में खर्च कर देते हैं।

सुखी किसान

खेती तो अधिकतर लोग करते हैं किन्तु लोक का कहना है कि वह किसान सुखी होता है जो अपनी खेती के काम समय से करता है और जो समय बीतने के बाद करता है, उसे पछताना पड़ता है[4] क्योंकि जो खेत पहले बोया जाता है

---

१. धरती आ महतारी बराबर ह।

२. जेकरा बिगहा पचास ओकरा कटवनी के आस।

३. एक काठा जमीन ना तीन काठा राज बा।

४. आगिल खेती आगे आगे, पाछिल खेती भागे-जोगे।

वह पहले होता है और जो बाद में बोया जाता है, वह होता भी है और नहीं भी होता। इसलिए आवश्यक है कि हम समय से खेती करें।

खेती करने से पहले यह भी आवश्यक है कि हमारे पास अच्छे बैल हों। बिना बैल के न तो खेती होती है, न बिना भाइयों के शत्रुओं से मुकाबला होता है और न बिना औरत के घर की व्यवस्था होती है।[1] लोक ने देखा है कि जिसके पास बैल नहीं रहते, वे किस भाँति जोताई, बोआई तथा दँवरी के समय दूसरों के मुँह देखते हैं तो भी उनके काम समय से नहीं होते। उसने अपने अनुभव को ही कहा है।

खेती भी जब तक तीन-चार हल की नहीं होती, तब तक बेचारा किसान अभाव-ग्रस्त बना रहता है। लोक कहावतकार ने ठीक ही कहा है कि केवल एक हल की खेती हत्या है, अर्थात् इससे किसान का खर्च नहीं चलता। दो हल की खेती कोई काम है, तीन हल की खेती खेती है और चार हल की खेती राज है।[2] हम गाँवों में देखते हैं कि जिनके यहाँ तीन-चार हल की खेती होती है, वे तो सुखी होते हैं, दो हल वालों का खर्च निकल जाता है और बेचारा एक हल वाला तो मारा जाता है। इसके लिए पूरा काम नहीं होता और सारा परिवार उसी में लगा रहता है। हमारे समाज में जो गरीबी व्याप्त है, उसका एक कारण यह भी है।

दुखी किसान

सुखी किसान के विषय में विचार करते समय दुखी किसान के जीवन पर भी प्रकाश पड़ा है। एक तो यह कि जो किसान समय से खेती नहीं करता, वह दुखी होता है[3] और दूसरा वह जो दूसरों के बैलों के आसरे खेती करता है। लोक कलाकार ने यह भी कहा है कि जो अकेले खेती करता है और जो अकेले ही मार-पीट करता है, दोनों की सदा हार होती है।[4]

लोक के इन अनुभवों से हम भारतीय किसानों की स्थिति सुधार सकते हैं

---

१. बिनु बैला खेती करे, बिनु भाइन के मारि।
बिनु मेहरारू घर करे, तीनू काम बेकाम।

२. एक हर हत्या दुइ हर काज, तीन हर खेती, चार हर राज।

३. सावन में ससुरारी गइले, पूस में खइले पूवा।
चइत में छैला पूछत डोले, तोहरा केतिक होला।

४. अकसर खेती अकसर मारि, घाघ कहे दूनों के हारि।

और भारत की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ कर सकते हैं। किसानों को कोई कृषिशास्त्र नहीं पढ़ाता। वे अपने अनुभव से सभी कुछ सीखते हैं और उन्हें कहावतों तथा उक्तियों के माध्यम से याद रखते हैं। आवश्यकता है कि सरकार इनकी त्रुटियों को दूर करे तथा इनके कार्य में सहायक बने।

खेती की पद्धति

अधिकतर लोग अकेले खेती करते हैं, कुछ लोग दूसरों के साथ मिलकर भी खेती करते हैं। इस पद्धति को 'सझिया' की खेती कहते हैं।[१] लोक ने इसे आदर्श नहीं माना है, क्योंकि उनमें हमेशा खींचा-तानी बनी रहती है। धान के तथा अन्य खेत 'अधिया' तथा 'तीसरी' पर भी बोने के लिए दिये जाते हैं। धान के खेत मनी पर भी बोने के लिए दिये जाते हैं।

जोताई-बोआई

जिस दिन खेत को जोताई शुरू होती है, उसे 'समहुत' करना कहते हैं। उस दिन प्रत्येक घर में विशेष रूप से भोजन की तैयारी होती है। ऊख के लिए खेत को सौ चास, धान के लिए पचास चास, गेहूँ के लिए पचीस चास और सरसों के लिए बारह चास जोतने का विधान है[२] क्योंकि इतनी बार खेत को जोतने से उसकी मिट्टी मुलायम हो जाती है और उसमें नमी भी आ जाती है।

किसान हल तथा बैल दोनों को देवता मानते हैं, उन्हें प्रणाम करते हैं, क्योंकि उनकी सहायता से ही उन्हें भोजन मिलता है। यह ऋग्वेद की भावना को प्रकट करता है कि जो हमारी सहायता करे, वही देवता है। जब खेत बोया जाता है तो संध्या समय बीज को चारों कोनों में फेंका जाता है और कामना की जाती है कि चारों कोन हरियाली से पूर्ण हों और सुहासित लगें।[३] किसान खेत के मेड़ को ऊँचा करते हैं ताकि वर्षा का पानी खेत में जमा हो और अलग

---

१. सझिया के खेत अधिया।

२. बिहार पिजेंट लाइफ—सर जार्ज ए० ग्रियर्सन, पृ० १७२
चौ चास गंडा, पचास चास मंडा।
तेकरा आधा मोरी, तेकरा आधा तोरी॥

३. हरियर-हरियर महादेव, चारो कोनवा सहादेव।

से सिंचाई न करनी पड़े।[1]

भोजपुरी क्षेत्र के बिहार वाले भाग में धान की खेती अधिक होती है। कहा जाता है कि धान और क्षत्रिय के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता कि इनके कितने प्रकार हैं।[2] एक धान का नाम साठी है, जो साठ दिनों में तैयार हो जाता है।[3] इसका सांस्कृतिक मूल्य अधिक है। जनेऊ तथा विवाह में इसे ही बरुआ तथा दुलहा-दुलहन के हाथ में देकर चूमा जाता है।[4] सबसे अच्छा बासमती धान माना जाता है। लोक गीतों में नायिकाएँ कामना करती हैं कि यदि प्रिय के आने का समाचार मिला होता तो मैं बासमती चावल छँटवाकर रखती।[5] आर्द्रा नक्षत्र में धान बोने का विधान है तथा पुष्य नक्षत्र में बोना वर्जित है।[6]

मड़ुआ, साँवा, और कोदो की खेती भी होती है, किन्तु कोदो तथा मड़ुआ को निकृष्ट अन्न माना जाता है। केवल गरीब इनसे पेट की आग बुझाते हैं।[7] चने की खेती अच्छी मानी जाती है। क्योंकि चने से हम कचौरी, दाल, खिरवरा आदि व्यंजन बनाते हैं।[8] कहावतों में कहा गया है कि जो किसान धन कमाना

१. थोर जोतिह बहुत हेंगइह, ऊँच के बान्ह आरी।
उपजे त उपजे नाहीं त धाघ दीह गारी॥

२. बिहार पिजेंट लाइफ—ग्रियर्सन, पृ० २१६
रजपूत ओ (आ) धान के ओरिना ह।

३. साठी होवे साठि दिन, बरखा होवे राति दिन।

४. साठी के चउरा, लहालरि दूबि हो।

५. जउ हम जनती पिया की अवइया।
बासमती चउरा छँटाइ रखती॥

६. बिहार पिजेंट लाइफ—ग्रियर्सन पृ० २१८
आदरा धान, पुनरबस पैया।
गेल (गइल) किसान जे बोये चिरेया (चिरइया)॥

७. वही, पृ० २२७
कोदो मड़ुआ अन नहिं।
जोलहा धुनिया जन नहिं॥

८. वही, पृ० २३१
एहि रहिला के पूरि कचौरी, एहि रहिला के दालि।
एहि रहिला के कैली खिरवरा, बहुत मोटैले गाल॥

चाहते हों, उन्हें ऊख और कपास की खेती करनी चाहिये।[1] भोजपुरी क्षेत्र में पहले अफीम की खेती अधिक होती थी।[2] और चम्पारन तो नील की खेती के लिए प्रसिद्ध है ही। जब किसानों पर नीलहा साहबों के अत्याचार की चरम सीमा हो गई तो सबसे पहले गाँधी जी ने वहीं पर अपना सत्याग्रह प्रारम्भ किया। इसी सत्याग्रह के कारण ही राजेन्द्र बाबू से बापू बहुत प्रभावित हुये।[3]

भोजपुरी किसान काम करते समय मन बहलाने के लिए तम्बाकू खाते-पीते हैं तथा ब्राह्मण भी तम्बाकू खाते हैं। वे लोग इसके महत्व को बढ़ा-चढ़ा कर कहते हैं।[4] वहाँ तम्बाकू भी बोया जाता है।

सिंचाई

भोजपुरी क्षेत्र में जहाँ बाढ़ का पानी नहीं जाता तथा जो बाँगर है, वहाँ सिंचाई करनी पड़ती है। दोनी[5], ढेंकली[6] तथा मोट[7] से सिंचाई की जाती है। लोक ने इनकी विशेषताओं के आधार पर पहेलियाँ बनाई हैं और इन्हें मानव का रूप दिया है। इनके प्रति लोगों की पवित्र भावना भी है। जिस दिन सिंचाई प्रारम्भ की जाती है, इनकी पूजा भी होती है।

खेत की कटाई

जब खेत पक कर तैयार हो जाता है तो सबसे पहले उसमें से देवता के अंश से काटकर अलग रखते हैं। धान की बाली को दरवाजे पर टाँगना शुभ माना जाता है।। पिड़िया व्रत में नये धान को 'सोरगही' के रूप में खाया जाता है। जब गेहूँ-चने पक जाते हैं तो बसंत पंचमी के दिन उन्हें शंकर भगवान

---

१. बोऊ कपास भा उखि, ना त माँगि के खा भीखि।

२. पहिले दही जमाई के, पाछे दूहनी गाई।
बछवा ओकर पेट में कि हाटे लयनू बिकाइ॥

३. मोरा पिछुअरवा नोलवा के खेतवा राम।
ओइजे सहेबवा के डेरा हो राम॥

४. खइनी खाये ना पीये, से नर बताव कइसे जीये ?

५. करिया कुत्ती, बन में सुत्ती, लाते मारीं फन दे उठी।

६. ताल से आवे बकुली, पाताल से आवे बाचा।
हुचुकि मारे बकुली, पियाव आपन बाचा॥

७. सन के रस्सी मयन के काँटा,
हँकड़त आवे करियवा नाटा।

पर चढ़ाया जाता है। उसके बाद ही उन्हें खाया जाता है। इस भाँति लोक नये अन्न को देवता पर चढ़ाकर खाता है, क्योंकि वह उन्हें देवताओं का दिया हुआ मानता है। खेत काटने वाले मजदूरों को मजदूरी के रूप में बोझा दिया जाता है, जिसे 'बनि' कहते है।[१] कुछ लोग मजदूरों को मजदूरी नहीं देने के लिए आपस में झगड़ जाते हैं। ऐसे लोगों की लोक ने निंदा की है।

खलिहान

खेत काटने के बाद बोझ को एक जगह इकट्ठा कर देते हैं। उस स्थान को 'खरिहान' (खलिहान) कहते हैं। उसे देखकर किसान बहुत खुश होता है। उसके लिए यह लक्ष्मी है। बैलों से दँवरी की जाती है। इसके ऊपर भी लोक ने पहेली बना दी है और इन्हें मानव का रूप दे दिया है।[२] बैल जो गोबर करते हैं, उन्हें उस समय 'बढ़ान' कहते हैं, क्योंकि वे साक्षात देव रूप हैं।

अनाज को एक जगह इकट्ठा कर देते हैं, उसे 'रासि' (राशि) कहते हैं। इसके ऊपर गोबर का एक गोला रख देते हैं, जो इसकी रक्षा करता है। वह देवता के रूप में माना जाता है। इस राशि में से पहले ब्राह्मण तथा देवताओं का अंश निकाला जाता है। इसे 'बिसुन चिटुकी' कहते हैं। इस भाँति हमने देखा कि भोजपुरी संस्कृति में खेती तथा इससे संबंधित प्रत्येक कार्य के पीछे एक उच्च भावना है।

पशु-पालन

खेती तथा पशु-पालन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। खेती में बैलों की आवश्यकता होती है। किसान तथा अन्यों को दूध-दही की जरूरत होती है। इसलिए लोग इन्हें पालते हैं। गरीब भेंड़-बकरी पालते हैं। कुछ लोग वैभव एवं प्रतिष्ठा प्रदर्शन के लिए हाथी-घोड़े भी रखते हैं।

बैल

जो लोग खेती करते हैं, वे तो बैल अवश्य रखते हैं, क्योंकि बिना बैल के खेती हो ही नहीं सकती। अन्य लोग भी बैल रखते हैं। कुछ लोग बैल को महादेव के रूप में मानते हैं[३] और इसकी पूजा भी करते हैं।

---

१. बनि मारे के कवन उपाइ, देबे के बेरि मालिक चले कोहनाइ।
२. केहू चलल पाँच कोस, केहू चलल दस कोस,
केहू चलल पन्द्रह कोस, केहू चलल बीस कोस,
साँझि खा सभ केहू साथ हीं।
३. गाइ हई लछमी बरध महादेव।

छोटे बैलों को नाटा कहा जाता है, जिन्हें तेली कोल्हू में चलाने के लिए रखते हैं।[१] कुछ लोग बैलों को खरीदने-बेचने का काम करते हैं, उन्हें 'फेरहा' कहते हैं। ऐसे लोगों से बचकर रहने के लिए कहा गया है, क्योंकि ये जनता को ठगते हैं। कहावतों में दो दाँत, भूरे, सफेद, टूटे हुए सींग, मयन, तथा काले रंग के बैल रखने के लिए कहा गया है।[२]

गाय

अधिकतर लोग गाय पालते हैं। एक तो इससे दूध मिलता है, दूसरे लोक को इसके प्रति धार्मिक भावना भी है। इसलिए गाय पालना अच्छा माना जाता है। इसे लोग साक्षात लक्ष्मी के रूप में मानते हैं। इसलिए गाय को कसाई को देना पाप माना जाता है।[३]

गाय को लोग खूब खिलाते हैं ताकि इसका बछड़ा अच्छा हो! बछड़ों का अच्छा दाम मिलता है।[४] दूध देने के कारण गाय के सभी कष्टों को जनता खुशी-खुशी सहती है।[५] अहीर तो दस-बारह गायें रखते हैं और उन्हें चराते हैं। वास्तव में इनका जीवन चरवाहे काल के जीवन को बतलाता है।[६]

भैंस

अहीर तथा बड़े किसान भैंस पालते हैं। भैंस दूध तो बहुत देती है किन्तु

---

१. तेली के नाटा भइल बाड़।

२. बिहार पिजेंट लाइफ—सर जार्ज ए० ग्रियर्सन, पृ० २९२
बैल बेसाहे चललह कत, बैल बेसहिह दू दू दंत।
काछ कसौटी साँझोर बान, टीका चारि दोह उपरौड़।
जब देखिह मैना तब एहि पार से करीह बैना।
जब देखिह बँरिया गोल, उठ बैठ के करीह मोल,
जब देखिह करिया कंत कैला गोला देखइ जनु दंतु।

३ गाय आ बाभन ना मारे के।

४. खा गाइ, बाछा बिकाई तोहरे।

५. दुधारि गाय के दुगो लातो सहल जाला।

६. छोटी मुकी रहनी त बछरू चरवनी,
पियनी बकेनवा के दूध।
हालो देनी गवना करइहे मटि लगना
चढ़ल बा बकेनवा के दूध!

यह बहुत घास खाती है और गंदी रहती है। इसलिए लोक की भावना इसके प्रति अच्छी नहीं है।[1] गाय के गोबर से आँगन लीपना अच्छा माना जाता है किन्तु भैंस के गोबर से आँगन नहीं लीपा जाता।[2]

अन्य पशु

गरीब लोग बकरी पालते हैं।[3] इसका दूध फायदेमन्द होता है तथा इसके बच्चे लोग खाते हैं किन्तु लोक का विश्वास है कि जहाँ बकरी भेड़ रहती है, वहाँ दरिद्रा का वास होता है। वास्तव में जहाँ ये रहती हैं, वहाँ गन्दा कर देती हैं और वहाँ बदबू फैल जाती है, इसीलिए इनके प्रति लोक की ऐसी भावना हो गयी है।

गड़रिया भेंड़ पालते हैं।[4] इनके बाल से वे कंबल बनाते हैं। इसका घी दवा के काम आता है।

धनी लोग अपने वैभव को प्रदर्शित करने के लिए घोड़े-हाथी पालते हैं। विवाह- शादी में घोड़ों की आवश्यकता पड़ती है। इनके बिना बारात सजती ही नहीं।[5] कुछ किसान तथा बनिया सामान ढोने के लिए घोड़े रखते हैं।

हाथी रखना तो वैभव का प्रतीक है ही। यह माना जाता है कि जिसके दरवाजे पर हाथी झूमता है, वहाँ लक्ष्मी का निवास होता है। विवाह में लोग दूसरे लोगों से हाथी माँगकर ले जाते हैं। द्वार-पूजा के समय इसकी पूजा होती है। हाथी के साथ-साथ हाथी रखने वाले का नाम गाँव-गाँव फैलता है, उसकी प्रसिद्धि होती है।[6]

कारीगरी के काम

वास्तव में वर्ण-व्यवस्था एवं जाति का विभाजन श्रम-विभाग के आधार पर हुआ है ताकि प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई कार्य करे जिससे समाज का समुचित उत्थान एवं विकास हो सके। कुछ जातियाँ कारीगरी के काम करती

---

१. गाइ हई लछमी बरध महादेव, भँइसि हई सुअरी बहुत दूध देसु।
२. गाई के गोबरे महादेव आँगने लिपाई।
३. छेरि बकरी से हर चलीत, त बैल काहे के रखाइत।
४. जेतना भेंड़ि ना ओतना गड़ेरि।
५. हाथी साजो घोड़ा साजो, साजो ए कवन बाबा।
६. जेकर हाथी सेकर नाँव, हाथी फिरे गाँव-गाँव।

हैं, उन्हीं से अपनी जीविका चलाते हैं। इनमें बढ़ई, लोहार, सोनार, पटहेरा राज, कुम्हार, हलुवाई, रंगरेज, ठठेरा, चमार, जूड़िहार आदि मुख्य हैं।

बढ़ई

गाँवों में सबसे मुख्य कारीगर बढ़ई माना जाता है, क्योंकि यही खेती के लिए हल, घर के लिए ओखल-मूसर बनाता है। इसलिए इन्हें अपने औजार को हमेशा तेज रखना पड़ता है। कहा जाता है कि जिनके पास हथियार नहीं है, वे गाँव नहीं कमा सकते।[१]

लोक कथाओं में तो उन्हें उड़न खटोला तथा उड़ने वाले घोड़े तक बनाने का उल्लेख मिलता है।[२]

लोहार

लोहार का नाम बढ़ई के साथ ही आता है। यह लोहे के औजार बनाता है खुरपी-गँड़ासी पर सान चढ़ाता है। इसके लिए वह भाथी से आग प्रज्वलित करता है और लोहे को गरम करता है।[३] लोक ने इस क्रिया को एक अलग से देखा और उसे पहेली का रूप दे दिया। इसे देखकर लोग कहते हैं कि किसी गरीब को दुख मत दो क्योंकि जब भाथी की आह से लोहा जल जाता है तो जिन्दा आदमी की आह का कितना प्रभाव होगा?[४]

बढ़ई और लोहार दोनों को मजदूरी के रूप में अनाज दिया जाता है। पर्व-त्योहार के दिन भी इन्हें खाने के लिए दिया जाता है तथा जब खेत कटता है तो उन्हें बोझा दिया जाता है। इस भाँति हमने देखा कि इनको मजदूरी रुपए में नहीं दी जाती यह हमारे कृषि जीवन के प्रभाव स्पष्ट करता है।

सोनार

सोनार सोने-चाँदी के काम करता है जो इसके नाम से ही स्पष्ट है। हमारे यहाँ गहने पहनने की प्रथा है और विवाह में तो कर्ज लेकर भी गहने बनने

---

१. उ बढ़ई का गाँव कमाई, जेकरा बसूला न रुखानी।

२. 'बढ़ई के पाँच लड़के और काठ का घोड़ा' कथा में कहा गया है कि पारिवारिक कलह के कारण उसे जंगल में जाना पड़ता है। वहाँ वह विश्वकर्मा की कृपा से उड़न खटोला बनाता है।

३. धामिनि कीरा धम-धम करे, आ गँहुवन के बाचा झिंगुर बिनि बिनि खाइ।

४. तुलसी आह गरीब के हरि से सहल न जाय,
मुअला चाम का फूँक से लोह भसम होइ जाइ।

हो चाहिए। लोक गीतों में इनसे गहना बनाने के लिए बार-बार आग्रह किया जाता है।[१] इसलिए ये सुख से जीवन यापन करते हैं। मजदूरी के रूप में इन्हें पैसा दिया जाता है तथा पर्व-त्यौहार के दिन भोजन।

पटहेरा (पटवा)

पटवा को भोजपुरी में 'पटहेरा' कहते हैं। इनका काम सूत या रेशम में गहने गूथने का होता है। ये भी ग्रामीण कलाकार हैं। विवाह-शादी में इन्हें गहने-गुहने के लिए विशेष रूप से बुलाया जाता है। जिसका उल्लेख लोक गीतों तथा कथाओं में मिलता है। इसके लिए इन्हें 'साई' (बयाना) रूप में एक आना दिया जाता है।

कुम्हार

कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाते हैं। इनके चाक-आँवें[२] का उल्लेख लोक साहित्य में अधिक मिलता है। इन पर पहेलियाँ बनी हैं[३] तथा जब किसी बच्चे के प्रति उपेक्षा के भाव दिखलाना होता है तो उसे आँवे में रख आने का उल्लेख लोक-कथाओं में मिलता है।[४]

खपरैल कुम्हार ही बनाते हैं जिनसे मिट्टी के घर छाये जाते हैं।[५] लड़कों के लिए ये खिलौने भी बनाते हैं। साल में इन्हें मजदूरी के रूप में अनाज दिया जाता है तथा जब ये बर्तन लाते हैं, तब भी इन्हें अनाज दिया जाता है।

राज

राज को भोजपुरी में 'थवई' कहा जाता है। ये ईंट बनाते हैं तथा पक्के के घर बनाते हैं। हाँला कि इन्हें कोई ट्रेनिंग नहीं मिली रहती किन्तु कुछ ग्रामीण राज तो इतना अच्छा मकान बनाते हैं कि वे राहियों के मन भी मोह लेते हैं।[६]

---

१. मोरा पिछुअरवा सोनरवा के छोकड़वा रामा।
हरि हरि रइया रइया जोड़ेला कँगनवा ए हरी।

२. काँचे गुल-गुल, पकले कठेस, इ फर फरे मझवली का हेठ।

३. जब ले रहनी बारि कुँआरि, तबले सहनी मारि तोहारि।
अब हम गइनी सइयाँ के घरवा, अब ना सहबि मारि तोहारि।

४. केदल और केदली बहन की कथा में कहा गया है कि बड़ी रानी अपनी सौत के लड़कों को आँवे में रखवा देती है।

५. कहँवा के थवई आछा कोठा उठाये,
कहँवा के राजा देखन आये।

उनका समाज में आदर होता है। मजदूरी के रूप में इन्हें भोजन तथा पैसा दिया जाता है।

हलवाई

हलवाई मिठाई बनाता है। गाँवों में यह गुड़ की मिठाई से बच्चों को खुश करता है। इसकी दूकान पर बड़े-बड़े लोग भी जाते हैं,[1] क्योंकि गाँवों में होटल तो होते नहीं। हलवाइयों के विषय में लोक की सामान्य धारणा है कि ये सुन्दर और धनी होते हैं।[2]

रंगरेज

रंगरेज कपड़ा रंगने का काम करते हैं। विवाह में तो इनसे कपड़े रंगवाये ही जाते हैं, आजादी की लड़ाई के दिनों में इनसे 'राजबंसी चुनरिया' रंगवाने का उल्लेख मिलता है।[3]

ठठेरा

ठठेरा बर्तन बनाने तथा पुराने बर्तनों को बदलने का काम करते हैं। ये ठग के रूप में प्रसिद्ध होते हैं। जब समान स्तर के लोग एक दूसरे को ठगना चाहते हैं किन्तु नहीं ठग पाते तो कहा जाता है कि 'ठठेरे ठठेरे बदलइया ना होला'। बर्तन बदलते समय ये पुराने बर्तन को थोड़े दाम में लेते हैं और अपने नये बर्तन को बहुत महँगा देते हैं। इस अनुभव के आधार पर ही लोक ने यह कहावत बना दी और वह चल पड़ी है।

अन्य—चमार, चूड़ीहार, धुनिया

चमार चमड़े के काम करते हैं। वह उनसे मोट तथा जूते बनाता है। इनके बनाये हुए जूते को 'चमरुआ जूता' कहते हैं। गाँवो में पहले विवाह के समय ये विशेष रूप से रंगीन जूता बनाकर देते थे, जिन्हें 'बिअहूती जूता' कहा जाता था। इसके लिए उन्हें धोती पहनाया जाता था। जूते पर भी पहेलियाँ बनी हैं जो यौन-भावना से पूर्ण हैं।[4]

---

१. हलुवाई के दोकानि, बाबा के फतेहा।

२. हलुवा नियर हलुआइनि बिटिया, पूआ नियर तोरे गाल से।

३. राजबंसी चुनरिया रंगा द राजा हमरा के
अँवठि अँवठि पर भारत माता,
बिचवा में महात्मा गाँधी रंगा द राजा हमरा के।

४ तहरा घरे गइनी, आ निकालि के सूति रहनी—जूता

चूड़ीहार चूड़ियाँ या लहठियाँ बनाते हैं। चूड़ीहारिन उन्हें गाँवों में बेचने जाती हैं तथा औरतों को स्वयं पहनाती हैं। चूड़ी पहनाने की क्रिया तथा उस समय की स्त्रियों की प्रतिक्रिया पर काम-भावना से पूर्ण पहेली बनी है, जिसे सुनकर पहले तो व्यक्ति अवश्य चौंक जाता है।[१] चूड़ी पहनाने के बाद ये सौभाग्यवती स्त्रियों को 'आसीस' भी देती हैं।

धुनिया रुई धुनते हैं। जाड़े के दिनों में ये फटका लेकर घूमते हैं। उन दिनों इनकी खूब पूछ होती है, क्योंकि लोगों को रजाइयाँ भरवानी होती हैं।[२] भोजपुरी क्षेत्र में ठंढक अधिक पड़ती है, इसलिए भी उन दिनों इनके भाव बढ़ जाते हैं। श्रम के विभाग का तो यही महत्व है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना काम करे, क्योंकि हम अपनी सारी आवश्यकताओं को अकेले पूरा नहीं कर सकते। हमारा काम भी होता है और व्यक्ति का महत्व भी बना रहता है।

ग्रामीण उद्योग-धंधे

गाँवों में तेल निकालने, कपड़ा बुनने, ताड़ी निकालने के उद्योग-धंधे होते हैं। इनके अतिरिक्त भी लोग कई धंधे करते हैं, जिनके विषय में नीचे विचार किया जायेगा।

तेल निकालना

गाँवों में एक जाति तेल निकालने का काम करती है। इसलिए उसे 'तेली' कहते हैं। ये तेल निकालने के बाद तिलहन की खरी भी बनाते हैं।[३] गाँवों में तेली बड़े ही कंजूस होते हैं। इनके पास पैसे भी होते हैं। कहा जाता है कि गरीब से गरीब तेली होगा किन्तु उसके पास कुछ पैसे जरूर होंगे।[४]

तेल नापते समय ये कम देते हैं। इस भाँति प्रत्येक बार में कुछ न कुछ तेल बचा ही लेते हैं। इसलिए इन पर कोई विश्वास नहीं करता।[५] ये बड़े ही

---

१ बात चीत कब, बाँहि धरे तब।
आँहि उँह कब, आधा जाइ तब।
नीक लागे कब, पूरा जाइ तब।

२. बिहार पिजेंट लाइफ—जार्ज ए० ग्रियर्सन पृ० ७०
हाथे धनुहि कान्हे बान, कहाँ चले डिल्ली सूलतान।

३. जेकरा मद से हाथी माते, तेली लावे घानी।

४. सरलो तेली त एक अधेली।

५. तेलिया हरे बेरिया-बेरिया, दइबा हरे एके बेरिया।

चालाक होते हैं। कहा जाता है कि इन्हें कोई ठग नहीं सकता। 'दो ठग और एक तेली' कथा में दिखलाया गया है कि ठगों ने मिलकर तेली के नाटे को कम दाम में खरीद लिया। वह ताड़ गया कि ये ठग हैं। उस तेली ने न केवल नाटे के मूल्य लिये, बल्कि उसने ठग राम को समाप्त ही कर दिया।

कपड़ा बुनना

मुसलमानों में जो गरीब होते हैं, वे कपड़े बुनते है, उन्हें जुलाहा कहते हैं। इन लोगों को अपने काम में बहुत मुस्तैद रहना पड़ता है, क्योंकि तनिक भी असावधानी से कपड़े के खराब होने का डर बना रहता है।[1] मेहनत करने के बाद भी इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती, इसलिए कहा जाता है कि हमें कोई जुलाहा-धुनिया समझा है।[2]

ताड़ी निकालना

पासी जाति के लोग ताड़ के पेड़ से उसका रस निकालते हैं, जिसे ताड़ी कहते हैं। इसे नीच जाति के लोग पीते हैं। ताड़ी पीने के बाद वे झगड़ने लगते हैं, इसलिए इनके साथ-साथ पासी को भी लोक हेय दृष्टि से देखता है। कहा जाता है कि ये जहाँ रहेंगे, वहाँ विनाश होकर रहेगा।[3]

बाल बनाना

बाल बनाने तथा नख काटने का काम नाई करते हैं। इनके काम को 'गृहस्थ कमाना' कहते हैं। नाई बड़े ही चालाक होते हैं और बात करने में पटु।[4] गाँवों में जो विवाह-तय होते हैं, उनमें इनका बहुत हाथ होता है। साल में इन्हें मजदूरी के लिए अनाज दिया जाता है, जिसे कमाई कहते हैं।

अन्य

कपड़े सीना, कपड़े धोना, नदी पार करना तथा वैदकी :

दर्जी कपड़े सीने का काम करते हैं और धोबी कपड़े धोने का।[5] कहा जाता

---

१. बिहार पिजेंट लाइफ—जार्ज ए० ग्रियर्सन, पृ० ७०

करिगह छाड़ि तमासा जाय।) खेत खाय गदहा, मारल जाय जोलहा

नाहक चोट जोलाहा खाय

२. जोलहा-धुनिया समुझल।

३. अहीर गंड़रिया पासी, तीनों सत्यानासी।

४. अदमी में नउवा, पंछीन में कउवा आ लकड़ी में झउँआ बाड़ा चालाक होले।

५. मोटे-मोटे लिटिया पकइहे रे धोबिनिया,

जाये के होई गंगा पार।

है कि नाई, धोबी और दर्जी तीनों जातियाँ लापरवाह होती हैं।[१] क्योंकि तीनों लोग अपने काम में असावधानी बरतते हैं। धोबी को भी अनाज दिया जाता है तथा जब ये कपड़े धोकर लाते हैं तो प्रत्येक बार अलग से अनाज दिया जाता है, इसे 'छाक' कहते हैं। विवाह-शादी में नाई-धोबी को कपड़ा भी दिया जाता है।

भोजपुरी क्षेत्र में गंगा, घाघरा तथा गंडक नदियाँ हैं। जब वहाँ के लोगों को नदी के आर-पार जाना पड़ता है तो मल्लाहों को आवश्यकता पड़ती है जो अपनी नौका से उन्हें नदी पार कराते हैं।[२] मल्लाह खेवे के लिए राहियों को बहुत परेशान करते हैं, इसलिए लोक ने इन्हें 'बटमार' की संज्ञा दी है।[३] मल्लाहों को भी अनाज दिया जाता है तथा खाने के सतुआ।

गाँव में कुछ लोग बैदकी भी करते हैं जो लोगों को दवा देते हैं और झाड़-फूंक भी करते हैं।[४] लोक में ऐसे लोगों का बहुत आदर होता है। क्योंकि इनसे उनकी भलाई होती है। जिनमें कुछ विशेषता होती है, लोक उसका आदर करता ही है।

व्यापार

'शोभानयका बनजारा' व्यापार कथा

भोजपुरी संस्कृति में व्यापार का महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। वैश्यों का कर्म, धर्म और कर्तव्य ही व्यापार करना माना गया है। वैश्यों को प्रारम्भ से ही दुकानदारी तथा व्यापार की शिक्षा दी जाती है। अन्य वर्णों के बच्चे जो पहेली बुझाते हैं, उन्हें भोजपुरी में 'बुझौवल' कहते हैं किन्तु बनियों में प्रचलित पहेली को 'बैइठावक' कहते हैं, जिसका अर्थ है—बैठाना, हल करना।[५] जो वास्तव में हिसाब है। उन्हें हिसाब-किताब की शिक्षा प्रारम्भ से ही दी जाती है।

वैश्यों के जीवन से सम्बन्धित भोजपुरी में 'शोभानयका बनजारा' नाम की

---

१. नाई, धोबी, दरजी तीनि जाति अलगरजी।
२. भइया मलहवा छिछोरी रे खेलाउ।
३. घटवार बटमार बराबर होले।
४. गोकुला से बैदा बनि के अइले बनवारी।
गलियन गलियन बैदा पुकारे, बा कोई सहर बेमारो।
५. चारि आना बकरी, आठ आना गाइ, चारि रुपए भँइसि बिकाइ।
बीसे रुपया, बीसे जीव, जल्दी बताव कइ-कइ जीव।

लोक-गाथा है। इसमें भोजपुरी समाज के व्यापार-वाणिज्य का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। शाभानयका सोलह सौ बैलों पर जीरा, मिर्च लादकर मोरंग देश व्यापार करने जाता है। व्यापार की उसे इतनी चिन्ता है कि वह प्रथम रात्रि में ही अपनी पत्नी को छोड़कर चल देता है।[1] बनजारा का अर्थ ही घूम-घूमकर व्यापार करने वाला होता है।

केवल वैश्य ही व्यापार नहीं करते, अन्य व्यक्ति भी बैल[2], घोड़े तथा बैलगाड़ी[3] आदि के द्वारा व्यापार करते हैं। लोक-कथाओं में तो राजकुमारों के व्यापार करने तक का उल्लेख मिलता है। ये अपने अनुसार ही चाँदी-सोने का व्यापार करते हैं।[4]

व्यापार का आदर्श

भोजपुरी समाज में व्यापार का आदर्श भी माना गया है। लोकगीतों में कहा गया है कि नमक, चीनी तथा पान जैसे कच्चे मालों का व्यापार नहीं करना चाहिए, क्योंकि इनके जल्द गल जाने, नष्ट हो जाने का भय रहता है। इसलिए उनमें घाटे का डर रहता है।[5] इससे स्पष्ट होता है कि हमारे

---

१. भोजपुरी लोक-गाथा—सत्यव्रत सिन्हा, पृ० २०८ तथा २८८

रामा ओही दिन मोरंग के पैतवा रे ना।
रामा चलल बाटे सुघर बनिजरवा रे ना।

२. वही, पृ० २८६

रामा तव नयका हाँकि देले बरधवा रे ना।

३. वही, पृ० २८७

रामा लादि देला छकड़वा रे ना।

४. 'राजा के दो लड़के और एक राजा की रानी' कथा में बतलाया गया है कि राजा के एक लड़के ने कहा कि मैं व्यापार करने जाऊँगा। राजा ने कहा कि किस चीज की तुम्हें कमी है कि व्यापार करोगे? लेकिन उसने कहना नहीं माना। वह नाव पर सोने-चाँदी लादकर व्यापार करने जाता है।

५. हरि हरि दूरि लदन जनि जाउ छयल बयपारी ए हरी :
सभ कुछु लदीह रामा, नुनवा मति लदीह,
परत बूँद गलि जाय, रकम सब माटी ए हरी।
सभ कुछु लदीह रामा, चीनिया मति लदीह,
परत बूंद गलि जाय, रकम सब माटी ए हरी।
सब कुछु लदीह रामा, पनवा मति लदीह,
हरि बहत पवन उड़ि जाइ, कवन गुन होई ए हरी।

व्यापार का आदर्श लाभ होना चाहिए। लोक के इस विचार से उनकी व्यापारिक, व्यावहारिक तथा यथार्थ दृष्टि का पता लगता है।

व्यापारिक स्थान रीति तथा वस्तुएँ

यहाँ मैं भोजपुरी लोक-साहित्य में चित्रित व्यापारिक स्थान, रीति तथा वस्तुओं के विषय में एक साथ ही विचार कर रहा हूँ।

भोजपुरी लोक-साहित्य में व्यापार के लिए मोरंग जाने का अधिक उल्लेख मिलता है। कुछ व्यापारी तो छोटी उम्र में ही मोरंग व्यापार करने जाते थे। उनकी पत्नी को यह पता भी नहीं रहता था कि मेरा विवाह हुआ है या नहीं ?[१] नैपाल की तराई वाले भाग को मोरंग कहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन-काल से ही नैपाल से हमारा धार्मिक और व्यापारिक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

व्यापार करने के लिए 'पूरब' देश भी जाने का उल्लेख मिलता है ?[२] 'पूरब' कलकत्ता के लिए प्रयुक्त हुआ है। पहले भोजपुरी क्षेत्र में अफीम की खेती होती थी। वह अफीम बंगाल भेजी जाती थी, क्योंकि बंगाली लोग अफीम अधिक खाते हैं।[३]

भोजपुरी लोक-गीतों में बरहज बाजार तथा दोहरीघाट[४] बाजार का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। वहाँ सुपारी, खैर तथा लाल रंग की थैली बेचने का विस्तार से वर्णन मिलता है। बरहज बाजार में इतनी भीड़ है कि लोग भूल भी जाते हैं।[५] दोनों ही स्थान देवरिया जिले में हैं।

---

१. तहरो बिआह बेटी नान्हें हम कइनी,
तहरो कन्त गइले मोरङ्ग देस।

२. पछिम के हईं हम बार रे बटोहिया, पुरुब करेली रोजोगार।

३. पेट में बाचा आन्हर गाइ,
जेकर माखन बँगाला जाइ।

४. एह पार गङ्गा ए ओह पार जमुना, बीचे हो रेतवा,
लागे दोहरी बजरिया, बीचे हो रेतवा।
एक ओरि बेचाला हो खयर सोपरिया कि एक ओरि ना,
उ जे लाल बटुअवा कि एक ओरि ना।

५. जेवना ना जेवे राजा, गइले बरहज बजरिया,
पिया मोरे हेरा गइले ना, बरहज बजरिया।

जो किसी समय देसी शक्कर और सीरे के व्यापारिककेन्द्र थे किन्तु आजकल मिलों ने उस व्यापार को समाप्त कर दिया है। वहाँ के नाविक आज भी प्रसिद्ध हैं। पहले वहाँ नौका से ही व्यापार होता था।

इसी भाँति लोक-गीतों में छपरा के बाजार की भीड़ का वर्णन मिलता है?[१] यह भी एक समय व्यापारिक स्थान था, जहाँ से यू० पी० बिहार को माल भेजा जाता था। चोली, लहँगा तथा साड़ी आदि के व्यापार करने का भी उल्लेख मिलता है।[२]

राजा का कर्त्तव्य व्यापारियों के माल खरीदना

लोक-कथाओं में उल्लेख है कि बाजार में व्यापारी सभी चीजें बेचते हैं और लोग उन्हें खरीदते हैं। अन्त में राजा बाजार स्वयं बाजार करने आता है और जो चीजें नहीं बिकी रहतीं, उन्हें वह खरीद लेता है। वस्तुओं के मूल्य लाख-लाख रुपये तक देने का उल्लेख मिलता है।[३]

इससे स्पष्ट होता है कि लोक-साहित्य में जहाँ व्यापार का आदर्श बतलाया गया है, वहाँ राजा और जनता को भी सचेत किया गया है कि उन्हें व्यापारियों के सभी माल को खरीद लेना चाहिए। इस भाँति व्यापार की तो वृद्धि होगी ही, इसके साथ ही उत्पादन में भी वृद्धि होगी, देश की आर्थिक प्रगति होगी।

---

१. जेवना ना जेवे राजा गइले छपरवा, छपित भइले ना।
जइसे चान सुरुजवा छपित भइले ना।

२. भोजपुरी लोक गाथा—सत्यव्रत सिन्हा, पृ० २८५
रामा कइली चोलिया के सौदवा रे ना।
रामा बोले लहँगा के दमवा रे ना।

३. किसके भाग्य से?—एक राजा के चार लड़के थे। राजा ने उनसे पूछा कि तुम लोग किसके भाग्य से हो? तीन ने कहा कि आपके भाग्य से किन्तु चौथे ने कहा कि अपने भाग्य से। राजा ने तीन का विवाह तो राजकुमारियों से किया किन्तु उसने चौथे की शादी बगीचे की रखवालिन से कर दी। बेचारी रेशमी चोली बनाकर बाजार में बेचने गयी। लोगों ने जब दाम पूछा तो उसने एक लाख बतलाया। अन्त में राजा-रानी ने उसे एक लाख में खरीद लिया। इसी भाँति वह रोज एक चोली बेचती। ऐसे ही रुपए इकट्ठे करके उसने अपने बाप का राज्य खरीद लिया।

नौकरी

भोजपुरी क्षेत्र का अधिक भाग बाढ़-पीड़ित और सूखा-ग्रस्त होने के कारण उस क्षेत्र के लोगों को नौकरी करने के लिए परदेश जाना पड़ता है। खेती से पूरे परिवार का भरण-पोषण नहीं होता। गवना कराकर भी पुरुष को कमाने के लिए परदेश जाना पड़ता है[१]। इस प्रकार के लोक-गीतों में स्त्रियों का वियोग बह चला है। इसके साथ ही वहाँ के आर्थिक-जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है।

पटना, हाजीपुर तथा कलकत्ता नौकरी करने जाने का अधिक उल्लेख मिलता है। कहीं-कहीं तो परिवार के सभी मर्द नौकरी करने चले जाते हैं और घर में केवल स्त्रियाँ ही बच जाती हैं।[२] हमारे यहाँ यदि कहा जाय कि अमुक व्यक्ति 'पूरब' कमाने गया है तो इसका अर्थ है कि वह कलकत्ता गया है। कहावतों में कलकत्ते की भीड़-भाड़, नमकीन पानी तथा वेश्याओं की भीड़ से सजग रहने के लिए कहा गया है।[३] चटकल में अधिक लोग मजदूरी करते हैं।[४]

कुछ लोग बम्बई भी नौकरी करने जाते हैं। कहावतों में बम्बई के संघर्ष-पूर्ण, पश्चिमी एवं वैज्ञानिक प्रगति से पूर्ण जीवन की ओर भी संकेत है। जहाँ बिजली से रेलगाड़ी चलती है, बिना बादल गरजे जहाँ वर्षा होती है तथा स्त्रियाँ जहाँ बिना पुरुष के अकेली घूमती हैं।[५] सभी में एक विचित्रता है, एक अस्थिरता है।

लोगों को कई-कई वर्षों तक परदेस में ही रह जाना पड़ता है। बेचारे जो

---

१. गवना कराई पिया घर बइठवले,
अपने गइले परदेस रे विदेसिया।

२. के हो जइहें हाजीपुर, केहो जइहें पटना,
के हो जइहें कलकत्तवा के नोकरिया ए बिरिना।
ससुर जइहें हाजी पुर, भसुर जइहें पटना,
पिया जइहें कलकतवा के नोकरिया ए बिरिना।

३. घोड़ा गाड़ी नोना पानी अवरु रांड़ि के धाका,
इ तीनों से बचल रहे त केलि करे कलकत्ता।

४. चटकलवा से मोर बलमुआ, आवत होइहेंना।

५. बिन इंजीन गाड़ी चले, बिन गरजे बरसाति।
बिना पुरुष नारी फिरें, इ बम्बई के हालि।

कमाते हैं, वह तो घर वालों के भोजन के लिए भेज देते हैं। यदि साल में घर आवें तो और रुपए चाहिए, जो सम्भव नहीं है। इसलिए कई वर्ष बाद उन्हें घर जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। वह भी जब घर से तार आये, तब वे छुट्टी ले पाते हैं।[१] नौकरी में यही तो परतन्त्रता होती है कि आप जब चाहें, तब छुट्टी नहीं ले सकते और खेती तो अपने मन तथा अपने अधिकार में है।

शहर में नौकरी करने जाने वाले लोगों में से अधिकतर लोग वहाँ अकेले रहते हैं, इसलिए कभी-कभी वहाँ ही दूसरी स्त्रियों से उनका सम्बन्ध हो जाता है[२]। आये दिन ऐसी घटनाएँ होती हैं। उधर घर में उनकी पत्नी दिन-रात उन्हें याद करती है कि परदेश जाकर वे अपनी प्रिया को भूल गये। बेचारी स्त्रियों का कलेजा इस दुख से सूख जाता है।[३] मानव की आर्थिक विवशता के

---

१. बारह बरिस के उमिरिया त हरि मोरे बिदेसे गइले।
देइ गइले चनन चरखवा, ओंठघन के मचिया।
देइ गइले अपन दुहइया, धरम हमरो राखहु।
टूटे लागल चनन चरखवा, ओंठघन के मचिया।
टूटे लागल हरि के दुहइया, धरमवा कइसे राखबि।
केथि के करबो कजरवा, कथिम मसियनवा।
केकरा के बदबो कयथवा, चिठि लिखि भेजब।
आँचर फारि कागज करबो, नयन कजरवा मसि करबो।
छोट देवरवा बदबो कयथवा, चिठि लिखि भेजब।

× × ×

आरी पासे हरि बँचले कुसलवा त मने मुसुकइले।
बीचे ठहीं बँचले बियोगवा, त नयना से नीर ढरे।
कवन संकट धनि परले त अइसन बियोग लिखे।
देहु न साहेब हमके तलबिया, त हमहुँ घरे जइबो।

२. पाँच रुपइया के पिया के नोकरिया,
कि दस केइ ना, राखे ले कसबिनिया कि दस केइ ना।

३. जेवना ना जेवें राजा गइले बिदेसवा,
बिसराई गइले ना, अपना नाजो के सुधिया।
सूखि गइले ताल, सूखि गइले पोखरा, झुराई गइले ना,
हरि बिनु मोर करेजवा, झुराई गइले ना।

क्या-क्या परिणाम हो सकते हैं, उसका यह एक सार्थ-पूर्ण उदाहरण है।

नौकरी के लिए तथा नौकरी में व्यक्ति की कितनी दुर्दशा होती है, उसका यथार्थ चित्रण भोजपुरी लोक-कथा 'चुम-चटाकी' में हुआ है। नगर में धन के लिए पुरुष अपने सेठ के पाँच लात भी सहर्ष स्वीकार करता है। वह सोचता है कि यहाँ हमें कौन पहचानता है ? भले ही पाँच लात पड़ेंगे, अपमान होगा किन्तु रुपए तो मिलेंगे।[1] ये हैं रुपये और नौकरी के मायाजाल।

मिल मालिक और पूँजीपति किस तरह जनता का शोषण करते हैं। यह यथार्थ भी लोक-गीतों में प्रकट हुआ है। यदि अधिक जाड़ा या वर्षा हो तो सेठ जी घर से बाहर नहीं निकलेंगे—कहीं सर्दी न लग जाय। बेचारा नौकरी करने वाला आदमी, यदि तनिक देर से आता है तो उससे जवाब-तलब होता है, वेतन काट लिया जाता है।[2] होली हो या अन्य कोई त्योहार या उत्सव, किन्तु छुट्टी पूरी हो जाने पर नौकरी पर जाना ही पड़ता है। नौकरी करने वालों की

---

१. 'चुम-चटाकी'—राजा का एक लड़का था। एक जगह उसका विवाह ठीक हुआ। वह चूड़ीहार के बहाने अपनी औरत को देखने जाता है। जब वह लड़की चूड़ी पहनने आती है तो यह चूड़ी के पैसे नहीं लेता और कहता है 'ए हमार चुमचटाकी'। विवाह के बाद जब वह आती है तो यह 'ए हमार चूम-चटाकी' कहकर चिढ़ाता था। राजकुमार नौकरी करने जाने वाला था। उस औरत ने सोचा कि अब मैं इन्हें छकाऊँगी ! उसने कहा कि मैं मायके जाऊँगी। राजकुमार ने कहा कि ठीक है जाओ जिस शहर में राजकुमार जाने वाला था। वह औरत उसी शहर में जाकर एक सेठ का रूप बना लेती है। जब वह नौकरी ढूढ़ने लगता है तो संयोग से रानी के यहाँ पहुँच गया। रानी उससे माटी भरवाने लगी। एक दिन उसने कहा कि मैं जाना चाहती हूँ। जो मेरे पाँच लात सहेगा, उसे मैं अपना सारा धन दे दूँगा। राजकुमार ने कहा कि ठीक है—हमें पाँच लात मारिये किन्तु धन दीजिए।

२. राजा हो बड़ा कड़ा जल बरिसे, नोकरी कइसे जइब ना।
रानी हो, पाँवें पनहिया, हाथ में छाता, मुखे रुमलिया ना,
धीरे धीरे चलि जइबो साहब तलब कटिहें ना।

विवशता तथा पराधीनता का यथार्थ रूप लोक-गीतों में प्रकट हुआ है।[1]

लोक-कथाओं में प्रायः आता है कि राजा जब गरीब हो जाता है तो वह नौकरी करने लगता है। वह किसी का गुलाम हो जाता है। इस भाँति भोजपुरी जीवन का सही चित्रण लोक-साहित्य में हुआ है। नौकरी करने वाला व्यक्ति तो परदेश में कष्ट पाता रहता है, अपने हाथ से भोजन बनाता है, इधर घर में उसकी पत्नी भोजन के समय अपने पति को स्मरण करती है। रेल के आने की आवाज सुनकर, उसकी सीटी सुनकर उसे आशा बँधती है कि शायद मेरा प्रिय इस गाड़ी से आ जाय।[2] इन्हीं सब कारणों से लोक-साहित्य में नौकरी पेशा को अधम कहा गया है।

इनसे स्पष्ट होता है कि भोजपुरी लोगों में कष्ट उठाने की शक्ति है। वे अपनी जीविका के लिए सब कुछ कर सकते हैं, सह सकते हैं।

भीख माँगना

भोजपुरी क्षेत्र में एक जाति विशेष, जिसका नाम 'अथीथ' (गोसाईं) है, जो भीख माँगकर अपना जीवन यापन करती है। इनका यह पेशा ही होता है। शरीर से अच्छे और तगड़े लोग भी भीख माँगते हैं। भोजपुरी लोग इसे अच्छा नहीं मानते। उनका विश्वास है कि यदि ऐसे लोग मन्त्री हो जाँय तो कड़ुई लौकी ही बोआयेंगे।[3] अन्य जाति के शरीर से अच्छे लोग, यदि भीख माँगे तो वे दीन-हीन समझे जाते हैं।[4]

ब्राह्मण, ब्रह्मचारी तथा साधू भी भिक्षा माँगते हैं किन्तु इसे भीख माँगना नहीं कहते, भिक्षा माँगना कहते हैं। भिक्षा माँगने में शब्द के पीछे कुछ अच्छी

---

१. फागुन भरि दिलदार घरे रहु बालम
ढोल छवा देवों, झालि मँगा देवों,
बलु दुअरे पर जलसा लगा देबों,
फागुन भरि दिलदार घरे रहु बालम,

२. सोने के थारी में जेवना परोसलो,
अब हरि जेंवत होइहें ना।
रेजिया बोले, जिया मोरे चिहुँके,
अब हरि आवत होइहें ना।

३. अथीथ भइले मन्त्री बोआवे तीत लउकी।

४. माँगे के भीखि, चुकावे के जामा।

भावना है। गरीब ब्राह्मण के भीख माँगने का उल्लेख लोक-कथाओं में मिलता है। जनेऊ के समय बरुआ भिक्षा माँगता है कि उससे मैं काशी जाकर पढ़ूँगा।[१] वह काशी पढ़ने तो नहीं जाता। हाँ, एक परम्परा का पालन होता है। पहले ब्रह्मचारी ऋषि आश्रम चलाने के लिए भिक्षा माँगकर लाता था। यह उसी का अवशेष है।

साधुओं के लिए तो यह उनकी परीक्षा का एक माध्यम है। राजा भरथरी को जब जीवन से विरक्ति हो गई तो उन्होंने बाबा गोरखनाथ से शिष्य बनाने की विनती की। बहुत प्रार्थना के बाद उन्होंने कहा कि 'यदि तुम अपनी रानी को माँ' कहकर भिक्षा माँग लाओ तो मैं शिष्य बना लूँगा।[२] वे जाकर भीख माँगते हैं। महात्मा के लिए सभी स्त्रियाँ 'माँ' के समान हो जाती हैं। राजा गोपीचन्द भी जब जोगी बनते हैं तो अपनी बहन के यहाँ जाकर भीख माँगते हैं।[३] थोड़ा सा अनाज से लेकर सेर भर सोना, सेर भर चीनी, सवा सेर तेल, सवा सेर चावल भीख देने का उल्लेख मिलता है।[४] योगी विशेष रूप से सवा सेर अनाज, सवा रुपये माँगते हैं।

आर्थिक जीवन का यथार्थ चित्रण

भोजपुरी लोक-साहित्य में छप्पनों प्रकार के व्यंजनों के वर्णन मिलते हैं। 'सोहा-साड़ी' का बार-बार उल्लेख मिलता है। विवाह के गीतों में सोने-चाँदी के अनेक गहनों की गणना होती है। इन सभी से भोजपुरी लोक-साहित्य में

---

१. भिच्छा ले ले बाहर भइली मायरि हो कवनि देई।
भिच्छवा ना ल ल तुरन्ते रे माई, अते अते रूप आइल रे बरुआ।

२. भोजपुरी लोक-गाथा—डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, पृ० १८३ और ३२५
बाबा गोरखनाथ कहले बच्चा इस तरीके जोग नाहीं पूरा होई
माता के भिच्छा ले आव माँग
पुत्र जानकर भिच्छा देव
तेरा जोगवा होइ जाये अम्मर।

३. वही, पृ० ३३४
तब डपटि बचनिया बोले राजा गोपीचन्दा
तोहरे हाथवा के लौंडी भिखिया न लेवे।

४. वही, पृ० ३३४
जाके ना तू सेर भर सोना लेलऽ बाबा सेर भर चीनी
सवा सेर तिल लेलऽ सवा सेर चाउर
जाके ना कहिदऽ लौड़ी लेलऽ बाबा मोर गरीब के घर के भीख

वहाँ के जीवन का जो चित्रण मिलता है वह बड़ा सम्पन्न प्रतीत होता है। कुछ लोग सम्पन्न भी हैं, किन्तु सभी नहीं। ये गीत सम्पन्न परिवार में भी गाये जाते हैं और एक महादरिद्र परिवार में भी। विशेषता है कि समान लगन तथा एक भाव से गाये जाते हैं। हमें तो ऐसा लगता है तथा मैं अनुभव करता हूँ कि लोक अपने दैनिक जीवन की कठिनाइयों तथा यथार्थता को भूलने के लिए 'राम राज्य' का स्वप्न देखता है।

इस सम्पन्न समाज के वर्णन के साथ भोजपुरी लोक-साहित्य में आर्थिक जीवन के यथार्थ रूप का भी चित्रण मिलता है, जो लोक की यथार्थवादी दृष्टि को प्रकट करता है। बड़े परिवारों तथा छोटे परिवारों में प्रायः पैसे की कमी से झगड़े हुआ करते हैं। पाँच-छः भाइयों में यदि कोई कुछ कमाता नहीं तो उसे अलग कर दिया जाता है।[1] नौकरी न मिलने से किस तरह आदमी कष्ट के साथ दिन काटता है। कभी रूखी-सूखी रोटी, कभी अनेवे का भात नमक के साथ खाकर पेट की आग बुझाता है।[2] परिवार में कोई कार्य होता है, उसमें भी रुपया लगता है। सुखिया-दुखिया बहन से सम्बन्धित लोक-गीत बड़ा ही प्रसिद्ध है। भाई के पुत्र होने पर सुखिया भतीजे के लिए गहने, कपड़े इत्यादि लायी थी, इसलिए भाभी बड़ा प्रसन्न हुई। इसका आदर सत्कार हुआ। नेग दिया गया। बेचारी दुखिया अपने आँचल में केवल दूब लायी थी। उस गरीब बहन को कौन पूछता? जब बेचारी जाने लगी तो उसकी कोंछ में कोदो और दूब डाला गया।[3] यही परिवारों में होता है, समाज में होता है। संसार का असली

१. बढ़ई की लोक-कथा में बतलाया गया है कि उसके पाँच लड़के थे। सबसे छोटे लड़के को नौकरी नहीं मिली थी। इसलिए परिवार में दिन रात कलह होता। उसकी औरत को सभी ताने कसते। अंत में उसे अलग करके घर से निकाल दिया गया।

२. जेवना ना जेंव परदेसी के राजा, चलन भइले ना।
दमरी के चाना बरिस दिन खाना, महँग भइले ना।
मोरे हरि के नोकरिया महँग भइले ना॥

३. सुखिया दुखिया दूनों बहिनियाँ, दूनों बधइया लेइ अइली राजा बीरन।
सुखिया जे गुजाई जहरा, गोड़हरा,
दुखिया त दूब के पौंड़ा, अरे राजा बीरन।

लेहु न बहिनो खोंइछ भरि मोतिया,
सैंया चढ़न के घोड़वा, अरे राजा बीरन।

लेहु ना बहिनी खोंइछ भरि कोदो,
उहे दूबे के पौंड़ा, अरे राजा बीरन।

रूप यही है। इससे हमारे जीवन में धन का महत्व प्रकट होता है।

जीवन का प्रथम और सर्वप्रधान यथार्थ है—रोटी, जिसके लिए मनुष्य निरंतर संघर्षशील है। समाज में व्याप्त अकाल, आर्थिक शोषण तथा गरीबी की ओर भी लोक का ध्यान गया है। एक गीत में कहा गया है कि एक समय था, जब बीस सेर का चावल मिलता था, अब डेढ़ सेर का ही मिलता है तथा और अनाज मिलते ही नहीं? केवल खुदिया चावल मिलता है। अकाल पड़ गया है। अन्न बिना जनता मर रही है।[१]

सन् १९४१ के अकाल का प्रभाव लोक-मानस पर भी पड़ा है। उस समय रंगून से खुदिया चावल चालान आता था, जिसका कोई स्वाद नहीं। ऊपर के लोक-गीत में उसी का वर्णन है। किन्तु आज तो स्थिति और भी बिगड़ गयी है। डेढ़ सेर का चावल नहीं मिलता, वरन् डेढ़ रुपए का एक सेर।

अंग्रेजी सरकार ने भी यहाँ की आर्थिक स्थिति को खराब कर दिया था। जा, चना, चावल मिलता ही नहीं था। मकाई के लिए लोग आपस में लड़ते थे। अन्न-वस्त्र दोनों पर कन्ट्रोल था?[२] द्वितीय विश्व युद्ध का हमारी आर्थिक स्थिति पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा था।

एक लोक गीत में जनता की गरीबी का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। शोषक और शोषित वर्ग का वास्तविक रूप हमारे सामने आ जाता है। 'फिकिरिया मरलसि जान' सत्य है, यथार्थ है। बेचारे किसान, मजदूर आदि गरीबी में पैदा होते हैं। दिन-रात परिश्रम करते हैं किन्तु पेट नहीं भरता। कभी उपसी खाते हैं, कभी ऐसे ही सो जाते हैं। कर्ज लेकर खेती करते हैं,

---

१. परले अकाल जान जाता विधाता,
बीस सेर के चाउर रहले, डेढ़ सेर बिकाता।
अवरु अन सब भइले नापाता,
खाली खुदिया चाउर बिकाता।

२. भोजपुरी लोक-गीतों के विविध रूप—श्रीधर मिश्र, १०९
भारत हो गइल बेहाल हो विदेसी तोरा रजवा में।
जव-चना महँग भइले, चउरा मिलत नइखे।
जनेवा पर भइले मारा-मारी, हो विदेसी तोरा रजवा में।
लुगा धोती महँग भइले, कुरता मिलत नइखे।
मोटिया पर भइले मारा मारी हो विदेसी तोरा रजवा में।

धान भी मारा चला जाता है। बेचारे बैल बेचकर साहू का कर्ज चुकाते हैं। स्त्री-बच्चे बिना कपड़े के नंगे रहते है।[१] बेचारा किसान मजदूर कर्ज भरते भरते एक दिन इस संसार से चला जाता है। यह है—हमारा समाज जहाँ एक व्यक्ति खाते-खाते मरता है। तो दूसरा अन्न बिना। ऐसे भी लोग हैं जो आम की गुठली की रोटी खा कर गुजारा करते हैं।

कहा जाता है कि भारत में दूध-दही की नदियाँ बहतीं थीं, किन्तु आज क्या है? दूध दही के दर्शन भी दुलर्भ हैं। मँहगी की वजह से दोनों समय भर पेट अन्न नहीं मिलता। इन सब का बड़ा ही यथार्थ वर्णन एक लोक गीत में मिलता है।

कोई कहता है कि मँहगी के कारण 'बिरहा'[२] भूल गया, कजली और कबीर भी भूल गये। अब तो प्रिया के उन्नत स्तन देखकर भी हृदय में टीस नहीं उठती।[३]

सोलह आने सही है। जब पेट भरता है, तभी खेल, कूद और किल्लोल आदि अच्छे लगते हैं। जब पेट खाली रहता है, तब कुछ अच्छा नहीं लगता। भूखे व्यक्ति से भजन भी नहीं होता। यही है जीवन का यथार्थ और आर्थिक जीवन का यथार्थ चित्रण। भूख से बढ़कर कोई दूसरी बड़ी बीमारी नहीं है और न अन्न से बढ़कर कोई दवा[४]।

---

१. भोजपुरी लोक-गीतों के विविध रूप—१०३
फिकिरिया मरलसि जान, दुरदिनवा कइलसि हैरान।
करजा काढ़ि के खेती कइलीं, मारि गइल सब धान॥
बैला बेचि के सहुआ के दिहलीं, रतिया कइली बिहान।
लइका लइकी के लँगटे देखनी, मेहरी के लुगरी पुरान।
सहुआ रजवा चैन से सोवैं, हमरे नाहीं ठिकान।
कबहुक लपसी लाटा खइनीं, कबहुँक साँझ बिहान।
फिकिरिया मरलसि जान, दुरदिनवा कइलसि हैरान।

२. बाहर लामी लामी धोती, भीतर अँठौली के रोटी।

३. भोजपुरी लोग गीत के विविध रूप—श्रीधर मिश्र, पृ० १०४
मँहगी के मारे बिरहा बिसरल,
भूलि गइल कजरी कबीर।
गोरी के देखि के उठल जोबनवा,
अब उठे ना करेजवा में पीर।

४. भूखि नियर दोसर बेमारी ना, आ अन नीयर दोसर दवाई ना।

चौथा अध्याय

राजनीतिक जीवन का चित्रण

समाज में व्यवस्था रखने के लिए अनेक छोटे-बड़े संगठन होते हैं। समाज का राजनीतिक संगठन राज्य है। राज्य के दो मुख्य कार्य होते हैं। पहला, राज्य में जो लोग रहते हैं, उनको अन्दर के तथा बाहर के शत्रुओं से रक्षा करना; तथा दूसरा, उनके इन समान स्वार्थों की रक्षा करना, जिन्हें वे व्यक्तिगत रूप से पूरा नहीं कर पाते तथा जिसके लिए समाज की सामूहिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन करते समय हमने देखा कि उनमें वर्णित तथा समाज में प्रचलित परिवार, जातीय पंचायत तथा ग्राम पंचायत जैसे संगठनों में ही राज्य तथा राजनीतिक जीवन के तत्व मिलने लगते हैं। भोजपुरी लोक-कथाएँ तो मध्ययुगीन राजनीतिक जीवन के चित्र को प्रस्तुत करती ही हैं। भोजपुरी लोक-साहित्य में राजनातिक जीवन का जो चित्रण हुआ है, उसमें मुसलमान शासकों के अत्याचारों का उल्लेख है। इसके साथ ही १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर अब तक की राष्ट्रीयधारा का चित्रण मिलता है। इन सब पर क्रमशः विचार करूँगा।

संस्थाएँ जिनमें राजनीतिक जीवन के तत्व निहित हैं

परिवार

मालिक, जो बूढ़ा व्यक्ति होता है, वह राजा के रूप में होता है। परिवार में सामूहिक एकता तथा हित की भावना होती है। वह अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करता है। उसकी प्रगति में जो बाधक बनता है, वह उसे अपने अनुसार दंड भी देता है।[४]

परिवार की कुछ मर्यादा भी होती है, हमारे यहाँ कहा जाता है कि "बाप दादा के नाँव न हँसावे के" "कुल परिवार के धरम पालन करे के चाहीं।" यही कानून है। जो परिवार की मर्यादा के विरुद्ध कार्य करता है, सभी मिलकर उसे अलग कर देते हैं, उससे कोई बोलता नहीं, अपनी पंगत में नहीं बैठाता। यही दंड का विधान है।

जातीय पंचायत

लोक तथा लोक-साहित्य में जातीय पंचायतों का उल्लेख मिलता हैं। नीच